

ORIGINAL ARTICLE



## भारतीय संस्कृति में मूर्ति पूजन एवं यक्ष पूजन की मान्यता

प्रो. निरंजन कुमार दूबे

व्याख्याता, इतिहास विभाग सह इग्नू सहायक समन्वयक (0577)  
सरस्वती अर्जुन एकलव्य स्नातक महाविद्यालय, जमुई, बिहार.

### सारांश :

मूर्तिपूजा भारतीय संस्कृति में प्रतीकवाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सबके लिए सरल सीधी पूजा-पद्धति को आविष्कार करने का श्रेय भारत को ही प्राप्त है। पूजा-पद्धति की उपयोगिता और सरलता की दृष्टि से हिन्दू धर्म की तुलना अन्य सम्प्रदायों से नहीं हो सकती। हिन्दू धर्म में ऐसे वैज्ञानिक मूलभूत सिद्धांत दिखाई पड़ते हैं, जिनसे हिन्दुओं का कुशाग्र बुद्धि विवेक और मनोविज्ञान की अपूर्व जानकारी का पता चलता है। इसी प्रकार भारत में प्राचीनकाल से ही यक्ष पूजा का अस्तित्व रहा है। यक्ष धन एवं समृद्धि के देवता माने गये हैं। धन, स्वास्थ्य एवं अमरत्व प्रदान करने के कारण ये लोक प्रिय देव बन गये। साहित्य एवं पुरातत्व में यक्ष पूजा के प्रभूत प्रमाण प्राप्त हुए हैं। वेद, ब्राह्मण, महाकाव्य एवं पुराणों में यक्ष का उल्लेख मिलता है। मौर्य काल में मथुरा, पटना, विदिशा, नोह से यक्ष एवं यक्षिणियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। कश्मीर से तमिलनाडू तक तथा सौराष्ट्र से बंगाल तक आज भी कई क्षेत्रों में यक्षों की पूजा की जाती है।

### प्रस्तावना :

पूजा ऐसी ही प्रतीक पद्धति है। मूर्ति-पूजा क्या है? पत्थर, मिट्टी, धातु या चित्र इत्यादि की प्रतिमा को मध्यस्थ बनाकर हम सर्वव्यापी अनन्त शक्तियों और गुणों से सम्पन्न परमात्मा को अपने सम्मुख उपस्थित देखते हैं। निराकार ब्रह्म का मानस चित्र निर्माण करना कष्टसाध्य है। बड़े योगी, विचारक, तत्त्ववेत्ता सम्भव है यह कठिन कार्य कर दिखायें, किन्तु साधारण जन के लिए तो वह नितांत असम्भव सा है। भावुक भक्तों, विशेषतः नारी उपासकों के लिए किसी प्रकार की मूर्ति का आधार रहने से उपासना में बड़ी सहायता मिलती है। मानस चिन्तन और एकाग्रता की सुविधा को ध्यान में रखते हुए प्रतीक रूप में मूर्ति-पूजा की योजना बनी है। साधक अपनी श्रद्धा के अनुसार भगवान की कोई भी मूर्ति चुन लेता है और साधना अन्तःचेतना ऐसा अनुभव करती है मानो साक्षात् भगवान से हमारा मिलन हो रहा है। मनीषियों का यह कथन सत्य है कि इस प्रकार की मूर्ति-पूजा में भावना प्रधान और प्रतिमा गौण है, तो भी प्रतिमा को ही यह श्रेय देना पड़ेगा कि वह भगवान की भावनाओं का उत्प्रेरक और संचार विशेष रूप से हमारे अन्तःकरण में करती है। यों कोई चाहे, तो चाहे जब जहाँ भगवान को स्मरण कर सकता है, पर मन्दिर में जाकर प्रभु-प्रतिमा के सम्मुख अनायास ही जो आनंद प्राप्त होता है, वह बिना मन्दिर में जाये, चाहे, जब कठिनता से ही प्राप्त होगा।

गंगा-तट पर बैठकर ईश्वरीय शक्तियों का जो चमत्कार मन में उत्पन्न होता है, वह अन्यत्र मुश्किल से ही हो सकता है। मूर्ति-पूजा के साथ-साथ धर्म मार्ग में सिद्धांतानुसार प्रगति करने के लिए हमारे यहाँ

त्याग और संयम पर बड़ा जोर दिया गया है। सोलह संस्कार, नाना प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्ड, व्रत, जप, तप, पूजा, अनुष्ठान, तीर्थ यात्राएँ, दान, पुण्य, स्वाध्याय, सत्संग ऐसे ही दिव्य प्रयोजन हैं, जिनसे मनुष्य में संयम और व्यवस्था आती है। मन दृढ़ बनकर दिव्यत्व की ओर बढ़ता है। आध्यात्मिक नियंत्रण में रहने का अभ्यस्त बनता है।

मूर्ति— जड़ (मूल) ही सबका आधार हुआ करती है। जड़ सेवा के बिना किसी का भी कार्य नहीं चलता। दूसरे की आत्मा की प्रसन्नतापूर्वक उसके आधारभूत जड़ शरीर एवं उसके अंगों की सेवा करनी पड़ती है। परमात्मा की उपासना के लिए भी उसके आश्रय स्वरूप जड़ प्रकृति की पूजा करनी पड़ती है। हम वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, प्रकाश आदि की उपासना में प्रचुर लाभ उठाते हैं, तब मूर्तिपूजा से क्यों घबराना चाहिए? उसके द्वारा तो आप अणु— अणु में व्यापक चेतन (सच्चिदानंद) की पूजा कर रहे होते हैं। आप जिस बुद्धि को या मन को आधारभूत करके परमात्मा का अध्ययन कर रहे होते हैं क्या वे जड़ नहीं हैं? परमात्मा भी जड़ प्रकृति के बिना कुछ नहीं कर सकता, सृष्टि भी नहीं रच सकता। तब सिद्ध हुआ कि जड़ और चेतन का परस्पर संबंध है। तब परमात्मा भी किसी मूर्ति के बिना उपास्य कैसे हो सकता है?

हमारे यहाँ मूर्तियाँ मन्दिरों में स्थापित हैं, जिनमें भावुक जिज्ञासु पूजन, वन्दन अर्चन के लिए जाते हैं और ईश्वर की मूर्तियों पर चित्त एकाग्र करते हैं। घर में परिवार की नाना चिन्ताओं से भरे रहने के कारण पूजा, अर्चन, ध्यान इत्यादि इतनी तरह नहीं हो पाता, जितना मन्दिर के प्रशान्त स्वच्छ वातावरण में हो सकता है। अच्छे वातावरण का प्रभाव हमारी उत्तम वृत्तियों को शक्तिवान बनाने वाला है। मन्दिर के सात्विक वातावरण में कुप्रवृत्तियाँ स्वयं फीकी पड़ जाती हैं। इसलिए हिन्दू संस्कृति में मन्दिर की स्थापना को बड़ा महत्त्व दिया गया है।

प्राचीन भारतीय परम्परा में यक्ष पूजा का भी पर्याप्त महत्त्व था। सर्वप्रथम ऋग्वेद में यक्ष की पूजा का उल्लेख मिलता है। किन्तु यहाँ वह संभ्रान्त देव नहीं है वरन् उसे 'अवम' की संज्ञा देते हुए अन्य देवताओं से निम्न कहा गया है। यक्ष पूजा को सारहीन बताकर देव भक्तों को यक्ष के प्रभाव से बचने का उल्लेख प्रथम वेद करता है। यक्ष के रहने के स्थान को ऋग्वेद में यक्षसदम् कहा गया है। अथर्ववेद में लोक धर्म का प्राधान्य है अतः यहाँ यक्ष के विषय में अधिक जानकारी मिलती है। चतुर्थ वेद यक्ष भवन को अपराजितपुरी की संज्ञा देता है। यक्ष को बृहद्वपु अथवा महत् स्वरूप कहा गया है जो उसके विशाल, महाकाय शरीर का द्योतक है। प्रतीत होता है कि इस समय तक यक्ष लोक मान्यता और विश्वास का केन्द्र बन गये थे। उनकी लोकप्रियता का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि इन्द्र, वरुण, सोम आदि प्रधान वैदिक देवताओं को भी यक्ष की श्रेणी में रखा जाने लगा। अथर्ववेद यक्षों के राजा कुबेर का उल्लेख करता है। यहाँ कुबेर को वैश्रवण, यक्षराज, यक्षेण तथा यक्षेन्द्र आदि सम्बोधनों से पुकारा गया है। महाकाव्य आदिदेव ब्रह्मा द्वारा यक्षराज कुबेर को अमृतत्व, धनाधिपत्व तथा लोकपालत्व के तीन वरदान दिये जाने का उल्लेख करते हैं। मूलतः यक्ष धन अथवा समृद्धि के सूचक थे। इनका सम्बन्ध अमरता, स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन तथा समृद्धि से था और इन्हीं गुणों के कारण यक्ष पूजा इस लोक में लोकप्रिय हुई। रामायण में यक्ष और अमरत्व को पर्याय माना गया है। महाभारत में यक्ष को महाकाय तथा पर्वतोपम कहा गया है। यहाँ यक्षसदन को अवध्यपुर (ऐसा स्थान जहाँ मृत्यु न पहुँच सके) की संज्ञा दी गई है। इसी महाकाव्य के एक प्रसंग में यक्ष युधिष्ठिर संवाद होता है जिसमें यक्ष ने प्रथम पाण्डव से धर्म सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे थे। यह यक्ष एक तालाब का रक्षक देव था। यक्ष का एक पर्याय ब्रह्म था इसलिए महाभारत में यक्ष महोत्सव को ब्रह्मा कहा गया है। पुराणों के अनुसार सर्वप्रथम लोक में यक्ष पूजा ही प्रचलित थी। परवर्ती परम्परा में यक्षों की महिमा लोकधर्मों में बद्धमूल दिखाई पड़ती है जिसे विविध सम्प्रदायों और पूजा विश्वासों ने अपने-अपने ढंग से आत्मसात कर लिया। साहित्य के साथ-साथ पुरातत्व भी यक्ष पूजा की परम्परा तथा लोकप्रियता की ओर इंगित करता है।

---

**निष्कर्ष :**

कुछ व्यक्ति कहते हैं कि मन्दिरों में अनाचार होते हैं। उनकी संख्या दिन- प्रतिदिन बढ़ती जाती रही है। उन पर बहुत व्यय हो रहा है। अतः उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। सम्भव है इनमें से कुछ आक्षेप सत्य हों, किन्तु मन्दिरों को समाप्त कर देने या सरकार द्वारा जब्त कर लेने मात्र से क्या अनाचार दूर हो जायेंगे? यदि किसी अंग में कोई विकार आ जाय, तो क्या उसे जड़मूल से नष्ट कर देना उचित है? कदापि नहीं। उसमें उचित परिष्कार और सुधार करना चाहिए। इसी बात की आवश्यकता आज हमारे मन्दिरों में है। मन्दिर स्वेच्छा नैतिक शिक्षण के केन्द्र रहें। उनमें पढ़े-लिखे निस्पृह पुजारी रखे जायें, जो मूर्ति-पूजा कराने के साथ-साथ जनता को धर्म-ग्रन्थों, आचार शास्त्रों, नीति, ज्ञान का शिक्षण भी दें और जिनका चरित्र जनता के लिए आदर्श रूप हो। यक्ष पूजा की परम्परा अपने विविध स्वरूप में आज तक अक्षुण्ण है। जन साधारण जाकख के रूप में आज भी उनकी पूजा करता है। नोह (भरतपुर) में बाइस सौ वर्षों के उपरान्त भी ग्रामवासी विशालकाय घटोदर प्रतिमा की जाकख बाबा (संस्कृत यक्ष) के नाम से पूजा करते हैं। जन साधारण का विश्वास है कि वह समूचे ग्राम का शुभेच्छु, पालक एवं रक्षक है। आज भी अनेक गाँवों में बीर के नाम से यक्ष का चौरा मिलता है।

**संदर्भ-सूची :**

1. पं श्री राम शर्मा "आचार्य", भारतीय कर्मकाण्ड-परम्पराएँ एवं पूजा-पद्धति
2. संजय गुप्ता, मूर्ति-पूजा चित्त-शुद्धि का साधन
3. भारतीय संस्कृति का आधारभूत तत्व, गायत्री परिवार
1. अग्रवाल पी.के., गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, बुक्स एशिया, वाराणसी
2. गुप्त, शिवकुमार (संपा), भारतीय संस्कृति के मूल आधार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर